**ओ३म्**

**‘मुम्बई में आर्यसमाज की स्थापना पर ऋषि दयानन्द की चेतावनी’**

**-मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून।**

वेदों के साक्षात्कर्ता ऋ़षियों की परम्परा को उन्नसवीं शताब्दी मे पुनजीर्वित करने वाले ऋषि दयानन्द सरस्वती जी ने 10 अप्रैल, 1875 को मुम्बई में आर्यसमाज की स्थापना की थी। इस अवसर पर उन्होंने आर्यसमाज की स्थापना में उत्सुक वेद प्रेमी आर्यों को आत्म निवेदन करते हुए चेतावनी भी दी थी जो वर्तमान में भी अक्षरक्षः सत्य सिद्ध होने के साथ प्रासंगिक है। ऋषि दयानन्द ने कहा था--

**आप यदि समाज से पुरुषार्थ कर परोपकार कर सकते हो, समाज कर लो इसमें मेरी कोई मनाई नहीं। परन्तु इसमें यथोचित व्यवस्था न रखोगे तो आगे गड़बड़ाध्याय हो जायगा।**

**मैं तो मात्र जैसा अन्य को उपदेश करता हूं वैसा ही आपको भी करूंगा और इतना लक्ष्य में रखना कि कोई स्वतन्त्र मेरा मत नहीं है। और मैं सर्वज्ञ भी नहीं हूं। इससे यदि कोई मेरी गलती आगे पाई जाय, युक्तिपूर्वक परीक्षा करके इसको भी सुधार लेना। यदि ऐसा न करेागे तो आगे यह भी एक मत हो जायेगा और इसी प्रकार से बाबावाक्यं प्रमाणं करके इस भारत में नाना प्रकार के मतमतान्तर प्रचलित होके, भीतर-भीतर दुराग्रह रख के धर्मान्ध होके लड़के (विरोध वा शत्रुता करके) नाना प्रकार की सद्विद्या का नाश करके यह भारतवर्ष दुर्दशा को प्राप्त हुआ है इस में यह भी एक मत बढ़ेगा।**

 **मेरा अभिप्राय तो यह है कि इस भारतवर्ष में नाना प्रकार के मतमतान्तर प्रचलित हैं। वह सब भी वेदों को मानते हैं, इनसे वेदशास्त्र रूपी समुद्र में यह सब नदी नाव पुनः मिला देने से धर्म ऐक्यता होगी। और धर्म ऐक्यता से सांसारिक और व्यवहारिक सुधारक होगी और इससे कला कौशल्यादि सब अभीष्ट सुधार होके मनुष्यमात्र का जीवन सफल होके अन्त में अपना (हमें) धर्म बल से अर्थ काम और मोक्ष मिल सकता है।**

 स्वामी जी ने कहा है कि यदि आर्यसमाज की स्थापना की इच्छा रखने वाले व्यक्ति समाज के द्वारा पुरुषार्थ कर परोपकार कर सकते हों और यथोचित व्यवस्था कर सकते हों तो समाज स्थापना में उनको कोई आपत्ति नहीं है अन्यथा आगे अनका स्थापित किया हुआ समाज भी गड़बड़ाध्याय हो जायगा। आज हमें आर्यसमाजों में यही गड़बड़ाध्याय सर्वत्र किसी न किसी रूप में देखने को मिलता है। इसका कारण स्वामी जी ने बताया था कि आर्यसमाज के लोग अर्थात् सभी अधिकारी और सदस्य पुरुषार्थी व परोपकारी होने के साथ यथोचित व्यवस्था करने में भी सक्षम हों। **आजकल समाज के अधिकारियों में प्रायः इन तीनों योग्यताओं का अभाव व न्यूनता दृष्टिगोचर होती है।** आज तो अधिकांश जगह पदों व अधिकारों के परस्पर मुकदमेंबाजी भी सामान्य बात हो गई है जो वर्षों तक चलते रहते हैं और आर्यसमाज का काम, वेदप्रचार आदि, कुप्रभावित रहता है। देहरादून में भी हम इन सब बातों को विगत 40 वर्षों से देखते आ रहे हैं और लगभग 21 वर्ष पूर्व इनसे लगभग विरत हो गये थे। समस्या हल कैसे हो यह मुख्य प्रयोजन है। इसके लिये हमारे मन में आज एक विचार यह आया कि जब भी कहीं चुनाव हो तो वहां चुने गये नये पदाधिकारियों का शपथ ग्रहण का आयोजन किया जाये जिसमें वह यह शपथ लें कि वह सभी अधिकारी आर्यसमाज का कार्य पूर्ण पुरुषार्थ और परोपकार की भावना से करेंगे। आर्यसमाज की यथोचित व्यवस्था करेंगे। इसमें योग्य वा सफल न होने पर वह पदत्याग कर देंगे। मुकदमेबाजी व गुटबाची से दूर रहेंगे। आर्यसमाज की उन्नति हेतु समाज की सेवा व वेद प्रचार कार्य व्यक्तिगत स्तर से ऋषि-ऋण से उऋण होने के लिए जीवनभर करेंगे। आर्यसमाज में गुण-कर्म-स्वभाव सहित सदस्यों की शैक्षिक व चारित्रिक योग्यता की उपेक्षा न करके उसे पूरा महत्व देंगे और सुशिक्षित व चरित्रवान लोगों को आर्यसमाज में आगे बढ़ाने का पूरा प्रयास करेंगे।

 आर्यसमाज के विद्वानों को यह हमारी यह बातें बचकानी लग सकती हैं परन्तु ऋषि के शब्दों को पढ़कर हमारे मन में ऐसे अनेक विचार आये जिसे हमने प्रस्तुत कर दिया है। हम सभी विद्वानों, आर्यनेताओं, मित्रों व पाठकों से भी अनुरोध करते हैं कि वह आर्यसमाज के संगठन को प्रभावशाली बनाने के लिए अपने सुझावों व प्रस्तावों से अवगत करायें जिसे आगे बढ़ाया जा सके।

ऋषि दयानन्द जी ने एक महत्वपूर्ण बात यह भी लिखी है कि **उनका कोई स्वतन्त्र मत नहीं है और वह सर्वज्ञ भी नहीं हैं।** इन पंक्तियों में शायद वह कह रहे हैं कि वह ईश्वरीय ज्ञान वेदों व वेदों के उच्च कोटि के विद्वानों, ज्ञानी व वेदों के साक्षात्कर्ता ऋषियों के वेदसम्मत विचारों, मान्यताओं व सिद्धान्तों को सत्य, युक्ति, तर्क व विवेकपूर्ण होने से मानते हैं। यही उनका मत है और इनसे पृथक उनका अपना निजी कोई स्वतन्त्र मत नहीं है। दूसरी बात उपर्युक्त पंक्तियों में ऋषि यह कहते हैं कि **वह सर्वज्ञ नहीं है** जिसका अर्थ है कि वह भी एक अल्पज्ञ जीव हैं। उनके सिद्धान्त अन्तिम नहीं हैं अतः उनके विचारों, मान्यताओं व सिद्धान्तों को भी सत्य की कसौटी पर कसा जा सकता है और यदि कहीं अपवादस्वरूप कोई मान्यता संदिग्ध हो तो उस पर योग्य विद्वानों द्वारा विचार कर उसे वेद, सत्य व विवेक आदि की कसौटी पर कसकर आवश्यकता होने और पूर्ण सत्य स्पष्ट होने पर उसमें सुधार किया जा सकता है। यही बात अन्य सभी मतों पर भी लागू होनी चाहिये। यदि बात आर्यसमाज पर लागू हो सकती है तो अन्य सभी पर भी लागू होनी चाहिये। सभी मतों के अनुयायियों को यह अधिकार होना चाहिये कि वह अपने अपने मत के सत्यासत्य विचारों व मान्यताओं को सत्य व विवेक की कसौटी पर कसकर ही ग्रहण करें। अनुचित मान्यताओं का त्याग करने का सभी मत के अनुयायियों को अधिकार होना चाहिये। किसी मत की कोई बात इस कारण से सत्य नहीं हो सकती है कि वह अमुक पुस्तक अमुक मत के आचार्य व संस्थापक आदि ने कही है और उस पर विचार नहीं हो सकता। इस महत्वपूर्ण सिद्धान्त का संज्ञान हमारे देश व्यवस्था को भी लेना चाहिये। हमारी दृष्टि में हर मत की पुस्तक की हर बात पर विचार हो सकता है और जो सभी मनुष्यों के लिए व्यक्तिगत, सामाजिक व वैश्विक दृष्टि से लाभप्रद हो, केवल उन्हीं को स्वीकार किया जाना चाहिये।

**भारत वा आर्यावर्त से नाना प्रकार की सद्विद्याओं का नाश और देश की दुर्दशा का कारण बताते हुए महर्षि दयानन्द जी ने कहा है कि इसका कारण बाबावाक्यं प्रमाणं का व्यवहार है।** इस बाबावाक्यं प्रमाणं से इस भारत में नाना प्रकार के मतमतान्तर प्रचलित होके, भीतर-भीतर (उनके आचार्यों व अनुयायियों द्वारा एक-दूसरे से) दुराग्रह रख के धर्मान्ध होके (आपस में व एक-दूसरे से) लड़ कर (विरोध वा शत्रुता करने) आदि से सद्विद्याओं का नाश और भारत की दुर्दशा हुई है। यदि ऋषि दयानन्द के अनुयायी भी अन्य मतों की ही तरह व्यवहार करेंगे तो इसमें (आर्यसमाज) यह भी एक मत बढ़ेगा। आज आर्यसमाज भी अन्य मतों की ही तरह एक मत बन गया है जो कि इसके मूलस्वरूप के विपरीत हैं। इस पर आर्यसमाज के विद्वानों को विचार करना चाहिये।

ऋषि दयानन्द के उपर्युक्त विचारों में आर्यसमाज का उद्देश्य भी बताया गया है। उनके शब्द हैं ‘‘मेरा अभिप्राय तो यह है कि इस भारतवर्ष में नाना प्रकार के मतमतान्तर प्रचलित हैं। वह सब भी वेदों को मानते हैं, इनसे वेदशास्त्र रूपी समुद्र में यह सब नदी नाव पुनः मिला देने से धर्म ऐक्यता होगी। धर्म ऐक्यता सांसारिक और व्यवहारिक स्थिति की सुधारक होगी और इससे कला कौशल्यादि सब अभीष्ट सुधार होके मनुष्यमात्र का जीवन सफल होके अन्त में हम सबको धर्म बल से अर्थ काम और मोक्ष मिल सकता है।” **इस ऋषि के विचार में आर्यसमाज का उद्देश्य वेदशास्त्र रूपी समुद्र में सब नदी नावों को पुनः मिला कर धर्म ऐक्यता सिद्ध करना है जिससे सांसारिक और व्यवहारिक तथा कला कौशल्यादि की उन्नति होकर मनुष्यमात्र का जीवन सफल सके।**

हमने अपनी अल्पमति से 10 अप्रैल, सन् 1875 को मुम्बई में आर्यसमाज की स्थापना के अवसर पर ऋषि द्वारा चेतावनी के रूप में कहे गये शब्दों पर अपने कुछ विचार प्रस्तुत किये हैं। हम यह विचार पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करते हैं।

  **-मनमोहन कुमार आर्य**

**पताः 196 चुक्खूवाला-2**

**देहरादून-248001**

**फोनः09412985121**